पगली

[भगवत्प्रेमके साथ-साथ धार्मिक, सामाजिक और
राजनीतिक क्रान्तिपर कुछ व्यंगात्मक विचार]

लेखक—

वियोगी हरि

प्रकाशक—

हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी,

२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता ।

पहला संस्करण } सं० १९८५ वि० { मूल्य १)
रेशमी जिल्द १।)

पगली

1922
8/12/23

[भगवत्प्रेमके साथ-साथ धार्मिक, सामाजिक और
राजनीतिक क्रान्तिपर कुछ व्यंगात्मक विचार]

लेखक—

वियोगी हरि

प्रकाशक—

हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी,

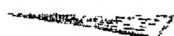
२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

पहला संस्करण } सं० १९८५ वि० { मूल्य १)
रेशमी जिल्द १।)

प्रकाशक
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर—
हिन्दी पुस्तक-एजेन्सी
२०३, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

मुद्रक—
जगदीशनारायण तिवारी,
वणिक् प्रेस
१, सरकार लेन, कलकत्ता।

भेंट 

धार्मिक,

सामाजिक एवं राजनीतिक

क्रान्ति

तथा

प्रेममें

पागल

नवयुवकोंके

मज़बूत हाथोंमें—

प्रकाशक
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर—
हिन्दी पुस्तक-एजेन्सी
२०३, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

मुद्रक—
जगदीशनारायण तिवारी,
वणिक् प्रेस
१, सरकार लेन, कलकत्ता।

भेंट ——

धार्मिक,

सामाजिक एवं राजनीतिक

क्रान्ति

तथा

प्रेममें

पागल

नवयुवकोंके

मज़बूत हाथोंमें——

श्री हरिः



पहला प्रलाप



मैं तो भाई, पगली हूं। सौ बार पगली हूं, हज़ार बार पगली हूं। मैं पगली, मेरी सात पीढ़ी पगली। अरे, उसीसे तो प्रीति जोड़ी थी! हां, उसी निठुर निर्दयसे। बड़ा झूठा है, बड़ा चालाक है, बड़ा कपटी है। दिन दहाड़े आँखोंमें धूल डालकर चम्पत हो गया।। उसी दिनसे लोग मुझे पगली कहने लगे हैं। उस दिनसे फिर वह मिला ही नहीं। तभीसे दीवानी बनी घूमती हूं उस प्यारेकी टोहमें। कहां-कहां उसे नहीं खोजा, कहां-कहां उसे गालियां नहीं सुनायीं! सुनो तो उसकी कुछ खोज-बीनकी कथा सुनाऊं। अच्छा, सुनो।

क्या सुनाऊं, क्या न सुनाऊं। लो, फिर उसकी सूरत सामने आ गयी। वही सूरत फिर आंखोंमें नाचने लगी। वही सूरत, जिसने आंखोंको गंगा-जमुना बना दिया है। वही सूरत, जिसने जिगरमें एक कसक पैदा कर दी है। वही सूरत, जिसने दिलमें एक तूफ़ान उठा दिया है। वही सूरत, जिसने मेरी दुनिया-को किसी प्रेम-समुद्रमें डुबो-दिया है। कैसे भुलाऊँ उस सूरतको! कैसे हटाऊँ उस चित्रको! जहां-तहां वही चित्र तो चित्रित देखती हूं। रातके सूरजमें और दिनके चांदमें वही तसवीर खिंची पाती हूँ। मरुभूमिकी लहरोंपर और समुद्रके रेतीले मैदानपर वही चित्र अङ्कित देख रही हूं। अहा! कैसा चित्र है! कैसी उसकी प्रतिच्छाया है! पर वह कहां? उस प्यारेका पता नहीं पाया।

अरे बाबा, उसे ढूंढने गयी थी। तीर्थ-यात्रा भी इसी बहाने कर डाली। चारों धाम और सातों पुरियां छान चुकी हूं। जहां-तहां उसके नामका अलख जगाती फिरी। पर, वह चोर मिला नहीं। हैं! पहले तो तीर्थोंके पण्डे और पुजारी मुझ गरी-बनीको प्राण-प्यारे लुटेरेका सिंहासन ही नहीं छूने देते थे। कहते थे, यह चुड़ैल अछूत है। पर मैं क्यों मानने लगी उनकी यह धर्म-व्यवस्था! जैसे बना तैसे मन्दिरमें घुस ही गयी। सारे देवालय टटोल डाले। पर वह चोर न मिला। अरे, पुजारी और दर्शक तो देवालयोंकी बाहरी तड़क-भड़कमें ही मस्त थे। देव-

दासियोंके राग-रंगसे उन्हें अवकास ही कहां, जो मेरे खोये धनको ढूँढ़कर मुझे सौंप देते। मेरे रोनेपर वे सब लंठ-लफंगे हँसते और नाचने-कूदनेपर क्रोधसे नाक-भौं सिकोड़ते थे। सुना था कि काशीमें वह मुक्तिको आलिंगन दिये खड़ा है, और मथुरा-की वीथियोंमें रंग-रेलियां कर रहा है। यह भी खबर पायी थी कि हज़रतने मक्केमें अपना रंग जमा रखा है, और जेरूसलममें भी अपना मोहन राग अलापा करते हैं। अब मुझसे पूछो। सच बोलूं या झूठ! कहोगे, पगली सच बोलना क्या जाने। अच्छी बात है। झूठ ही सही! तुम सत्यावतारोंसे मैं प्रमाण-पत्र लेने तो आई नहीं। हां, मुझे तो उस निठुरका दीदार कहीं नहीं मिला। हो सकता है, उसे देखनेकी मेरे पास वे आंखें न हों।

नहिं मन्दिरमें, नहिं पूजामें, नहिं घंटाकी घोरमें।
'हरीचन्द' वह बांध्यो डोलत एक प्रीतिकी डोरमें॥

प्रीतिकी डोर कहां पाऊँ! किस हाटसे वह रस्सी खरीद लाऊँ! यहां न पैसा न दाम—इतनी महंगी चीज़ कहांसे लाऊँ! अरे हां!

'हरीचन्द' वह बांध्यो डोलत एक प्रीतिकी डोरमें।

और सुनो। उस दाढ़ीजारकी पोथी चीर-फाड़ डाली तो कौन-सा अपराध हो गया। निगोड़ा मारने दौड़ा था। पाजी कथा-वाचक बनता है। मेरे प्रियतम हृदय-चन्द्रकी ओर तो प्रेमो-

न्मत्त हो देखता न था, घूंघटकी ओटमें हो तीर चलानेवाली उन मृग-नयनियोंकी आंखोंसे पापी आंखें लड़ा रहा था! उसका हृदय मरुभूमि था। वहां सरस प्रेम-लता कहां! पगलीने उसका अन्तरालय जा टटोला। कल्पित व्यास बाबाके हृदय-भवनमें कामिनी-काञ्चनको छोड़ और रखा ही क्या था। छिः छिः! हाथ मैला हो गया। मेरे प्राणेश्वरका पता बता देता, तो मैं उसकी चन्दन-चर्चित पोथीपर न जाने कितनी अशर्फियां चढ़ा देती। पर वह अन्धा पुराणोंकी सहस्रों आवृत्तियां करके भी जब उस हृदय-विहारीको न खोज सका, तो बोलो, मैं उसपर डाइनकी तरह क्यों न झपट पड़ूँ? मैंने तो सब श्रद्धालु श्रोताओंके देखते-ही-देखते उस पाखण्डीके सारे पत्रे-वत्रे चीर-फाड़कर फेंक दिये। अरे बापरे बाप,सारे बगुला भगत लगे पगलीपर पत्थर बरसाने। खूब उपल-वर्षा हुई। पर मैं भागी नहीं। पण्डितका शंख उठाकर ऐसे जोरसे फूँका कि रोचकता-प्रिय श्रोताओंके दिल दहल गये। विजय-गर्विता पगलीने अट्टहास किया। प्रलय-अट्टहास था वह प्रलय-अट्टहास! मालूम नहीं, मेरे अट्टहाससे कथा-वाचकका क्या हुआ।

नहिं भारत नहिं रामायनमें, नहिं मनुमें नहिं वेदमें।
नहिं झगरेमें नाहिं युक्तिमें, नाहिं मतनके भेदमें॥
अरे, हां—पियारो पैये केवल प्रेममें।

यही तो पागलपन है। अरे, प्यारे और प्रेममें अन्तर ही क्या है! क्या प्रेम साधन और प्रेम ही साध्य नहीं है! पगलीके शास्त्रमें प्रेम ही परा प्रकृति है और प्रेम ही परम पुरुष है। तीन लोकके तीरंदाज इसी एक निशानेपर टक बांधे देखे और सुने गये हैं। जिस किसीने यह लक्ष्य वेध लिया वह धन्य है, कृतार्थ है। कैसी दिल्लगी है! प्यारेके लिये प्रेमको खोजना पड़ेगा! मैं तो अब कुछ भी नहीं खोजती। जिसे खोजना हो मुझे ही खोज ले।

खैर, अब पगली-पुराण सुनो। उस दिन गयामें फल्गु-तटपर पचासों पनडुब्बे बेचारी मछलियोंका शिकार खेल रहे थे। गोल-मटोल सचिक्कण तोंदवन्त पण्डित-पुरोहित ही तो पनडुब्बे हैं। और मछलियोंसे मेरा अभिप्राय है पिंडपाणि सरल यजमानोंसे। सो, वहाँ 'तृप्यन्ताम्'की गगनभेदी गूँज, पितृ-पुत्रके बीचकी दलाली, निरक्षर भट्टाचार्योंका मन्त्र-दुर्दलन तथा काकावतार भोजन-भट्टोंका कांव-कांव देख-सुनकर, बाबा, मैं तो तालियां बजा-बजाकर हँसने लगी। जीवित माता-पिताकी तो कभी-बात भी न पूछनी चाहिए, उनकी तो खोपड़ी-भंजन लट्ठसे पूजा करनी चाहिए। हाँ, जब मर जायँ, तब उनके पास पिंड और तिलोदकका उपहार अवश्य भेज देना चाहिए। गयामें मुझे यही उपदेश मिला। पगलीको कहीं नास्तिक न मान बैठना। पगले तो नास्तिक होते

ही नहीं। तुम्हीं बताओ, वे दक्षिणा-लोलुप निरक्षर भोजन-भट्ट उन श्रद्धालुओंका पिंडोपहार क्या पितृलोक तक न भेज सकेंगे? पर मेरी श्राद्ध-विधि कुछ और ही है। मेरे श्राद्ध-मयूखमें तो यह लिखा है, कि नेत्र बन्द करके एक क्षण अपने पूर्वजोंका ध्यान करो, और स्मृति-मंजूषामें रखी हुई उनकी म्लान्त सुकृत-माला-पर श्रद्धाके साथ दस-पांच अश्रु-बिन्दु छिड़क दो। जब उन्होंने मेरी श्राद्ध-विधिकी अवहेलना की, और लगे मुझे डाँटने-डपटने, तब मैंने भी उन भीमकाय भोजन-भट्टोंकी आनितम्ब शिखाओंको पकड़-पकड़कर उन्हें ताक धिनाधिन नाच नचा दिया। फल्गु-मैयाकी जय हो! बड़ा बढ़िया श्राद्ध हुआ। भोज्य पदार्थ रखे ही थे। लूले-लँगड़े, अन्धे-गूँगे, कोढ़ी-ओढ़ी आदि जितने घिनौने नराकार अस्थि-कंकाल वहाँ मिले, सबको एक पंक्तिमें बिठाकर भोजन करा दिया। ऐसे ब्रह्म-तुल्य सत्पात्र पगलीको अन्यत्र कहाँ मिलते? पुरखे तर गये। उन्होंने अवश्य संतुष्ट हो मेरी यह श्राद्ध-लीला विमानोंपर चढ़े-चढ़े देखी होगी। तुम्हीं कहो कैसा श्राद्ध हुआ होगा।

चली थी उसे खोजने, बीचमें पड़ गयी कोरे कर्मठोंके चक्कर-में! सन्ध्या-वन्दन देखा, अग्निहोत्र देखा, यज्ञ देखा और न जाने क्या-क्या देखा। सब देखा, पर उसे न देखा। वेदके मन्त्र सुने, कुरानकी आयतें सुनीं और इंजीलके भजन सुने, पर उस

मोहनकी मोहिनी मुरली आजतक न कहीं सुनायी दी। तुम्हारे कर्मकाण्डको लेकर कबतक चाटा करूँ। तुम सब मेरे प्यारेकी ओटमें शिकार खेलने आये हो। उस भोलेभाले मुखड़ेवालेके नामपर धर्म-कर्मकी विडम्बना करने चले हो! क्या कहना, बड़े खिलाड़ी हो!

सुनकर चौंक न पड़ना। धर्मका विषय है, धर्मका। नवरात्र-का शुभ अवसर था। दुर्गा-पूजाके समारोहमें मैं भी शामिल हो गयी। उसके विरहमें किसी तरह मन-बहलाव करना था। यही सही। हाँ, सो मैं उस चंडिका-मन्दिरमें बेरोक-टोक घुस गयी। भारी-भारी कृष्णकाय काल भैरव दुर्गा-पूजा कर रहे थे। उनके मस्तक रक्त चन्दनसे चर्चित थे। मन्दिर मद्य–मांससे सुवासित हो रहा था। चार-पाँच भैंसे और दस-बीस बकरे लाल फूलोंकी मालाएँ पहने खड़े थे। एक खड्गहस्त भक्त मन्त्र बड़बड़ा रहा था। मद्य-मांसके लिए शक्तिकी तो नहीं, पर शाक्तोंकी जिह्वाएं लपलपा रही थीं। पगलीसे यह सब न देखा गया। उस काले भूतके हाथसे मैंने खड्ग छीन लिया। ताण्डवनृत्य करती हुई मैं भक्तोंके पवित्र मस्तक उछालने लगी। चण्डी खिल खिलाकर हँस पड़ी। बचे-खुचे साधकोंने मुझे ही दुर्गा समझ लिया। बस फिर क्या, लगी होने पगली देवीकी षोड़शोपचार पूजा! भैया हो! कलियुगमें पगली ही प्रत्यक्ष काली है। देखो

तो, बेचारे निरपराध पशुओंका बलि देने चले थे वे धर्मान्ध लुब्धे !

बलिदान बुरा नहीं है। मैं भी बलि होनेको फिरती हूं। मेरा प्यारा चाहता है कि यह पगली अपने अहङ्कार-अजाको बलि कर दे। पर मुझे अभीतक बलि-शक्ति प्राप्त नहीं हो सकी। इसीलिये उस दिन मैं शक्ति तो बन गयी, पर शाक्त न बन सकी। शाक्त तो योगी ही होता है। वही एक अपने अहङ्कारका बलि दे सकता है। सचमुच वह निठुर इसी बलिका भूखा है। कोई सद्‌गुरु योगी मिल जाय तो वह मुझे क्षणमात्रमें शाक्त बना डाले। ऐसा योगी तो मेरा वही प्रियतम है। हा, वह कब मिलेगा !

जोगिया, तू कबरे मिलेगो आई।
तेरे कारन जोग लियो है, घर घर अलख जगाई॥
दिवस न भूख, रैन नहिं निद्रा,तुम बिनु कछु न सुहाई।
मीराके प्रभु गिरिधर नागर, मिलिकैं तपात बुझाई॥

यों तो मुझे कई योगी मिले हैं, पर जैसा मैं चाहती हूं वैसा पागल योगी कोई न मिला। एक योगीकी कथा सुनो। वह बड़ा मायावी था। पूरा सिद्ध था। ऋद्धि-सिद्धि, नाटक-चेटक, आग-चूल्हा आदि सभी उसे सिद्ध था। क्यों जी, पतञ्जलि बाबा क्या यही सब नाटक-चेटक अपने योग-सूत्रोंमें लिख गये होंगे ? माना कि मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूं, पर विवेक-मर्दिनी भी तो नहीं

हूं। लगा मुझे दाढ़ीजार अपने जोगकी करामातें दिखाने। अखंड समाधि साध कर भोलेभाले बच्चोंको बहकाता था। पचासों नवयुवक उसके चेले हो गये। अरे, वह पक्का-पोढ़ा धूर्त था। तुम्हें मालूम न होगा, मैं दिलके भीतरकी खबर लानेवाली हूं। उस पहुंचे हुए सिद्धके भीतर पैठ ही तो गई। हा हा हा हा हा हा हा !! सिद्ध बाबाकी ध्यान-पिटारीमें क्या-क्या अमोल रत्न मेरे हाथ आये! कई बनी-ठनी चन्द्रमुखियां और ढेर-की-ढेर अशर्फियां! काम, क्रोध, लोभ और मोहकाही उसके अन्तरालयमें अखण्ड साम्राज्य था। दुर्वासनाओंके दुर्गन्धके मारे मुझ घिनौनीकी भी नाक सड़ी जाती थी। घबड़ाकर बाहर निकल आयी। और सिद्ध बाबाको मैंने ऐसी लातें और ऐसे घूंसे जमाये कि कहीं तो गिरी टूट-टाट कर उसकी रुद्राक्ष-माला, और कहीं गया लुढ़कता हुआ पाजीका दण्ड-कमण्डल! हा हा हा हा हा हा हा !!

अरे हां, तेरे कारन जोग लियो है,घर घर अलख जगाई।
जोगिया, तू कबरे मिलेगो आई।

न भूख है, न प्यास। नहीं नहीं, प्यास तो है और बड़ी तेज है। उस प्याससे ही मैं छटपटा रही हूँ। पर उस प्याससे कंठ और ओठ नहीं सूखते, आंखें सूख रही हैं। हा!

आँखड़ियाँ झाँई परीं, पंथ निहारि-निहारि ।
जीभड़ियाँ छाले परे, पीउ पुकारि-पुकारि ॥

अब तो गला बैठ गया है। निर्दयको कहांतक पुकारूं, मेरे लिए बहरा बना बैठा है। मिल जाय तो फिर ऐसा छकाऊं कि हाँ! अरे, छकाऊँ तो क्या, अपने मर्मकी सब बातें सुना डालूं।

कैसेहुँ जो अपबस करि पाऊँ।
जीवन-धन, तौ तुम्हैं खोलि हिय, जियकौ मरम सुनाऊँ ॥
या उर-अंतर प्रेम-कुटी रचि, पल-पांवड़े बिछाऊँ।
भाव-सेज सजि अति मृदु, तापै नाथ! तुम्हैं पौढ़ाऊँ ॥
तहँ पलोटि पद-पदुम तुम्हारे, ललकि-ललकि बलि जाऊँ।
लाय-लाय सीतल रज नैननि, जियकी जरनि सिराऊँ ॥
बूड़ि तुम्हारे स्याम-रंगमें, मानस पटहिं रँगाऊँ।
सहज पखारि पुरातन कारिख, पलमें धवल बनाऊँ ॥
ललित त्रिभङ्गी गति नट-नागर! उमँगि-उमँगि उर ध्याऊँ।
कठिन कुटिल गति या चितकी प्रभु, कोमल सरल सधाऊँ ॥
बँधिकैं तुम्हरी अलक-डोरिसों, हरि! भव-फंद छुड़ाऊँ।
लहि मुसुकान-माधुरी मोहन, षट-नवरसनि भुलाऊँ ॥
सींचि-सींचि तुव कृपा-वारि नित, करम-कुखेत सुखाऊँ।
लाल, तुम्हारे चपल चखनि बिच रमि इत-उत नहिं धाऊँ ॥

वेद-वाद ज्ञानादि वादि कै प्रेम-प्रथा प्रगटाऊँ।
'हरि' लै वीन लीन ह्वै तुव छवि, नित नव गुन-गन गाऊँ॥

उस कपटीको अपबस कर लेना ही तो कठिन है। किस अर्थका मेरा यह मनोराज्य! अरे, हाँ,

कैसेहुं जो अपवस करि पाऊँ।

गाना फिर सुनाऊँगी। अभी तो एक वेदान्तीकी कथा सुनाती हूँ। सुनो—एक दिन एक ज्ञानी कहो या विज्ञानी कहो, वेदान्ती कहो या द्वैत-अद्वैतवादी कहो, अथवा ईंट-पत्थर कुछ भी कहो मुझे विश्वनाथबाबाकी पुरीमें मिला। बात-बातमें गर्दन उठा-उठाकर उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीताके प्रमाण दे रहा था। और सुन लो, कहता था, 'अहंब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ! निगोड़ेका बाप भी कभी ईश्वर-परमेश्वर हुआ होगा! हैं, देखो—तुम्हीं बताओ, जिसे ब्रह्म-साक्षात्कार हो गया, वह संसारभरकी बकवास काहेको करता फिरेगा? ब्रह्म तो मन-वाणीसे परे है न? भैया, मैं ठहरी पगली। उस वेदान्तीपर ज्योंही मैं सहजस्वभावसे गालियोंकी पुष्प-वर्षा करने लगी, त्योंही हरामजादा अपने टकेसेर-वाले ब्रह्मवादको पोथियोंके बस्तेमें बंद करके मुझ पगलीपर बेतरह बिगड़ उठा। मैंने उसे एक गाली दी, तो उस ब्रह्मभूतने मुझे पचास गालियां दीं। मैं खिलखिलाकर हँस पड़ी। और मेरा आँय-बायँ-सायँ सुनकर वह ब्रह्मवादी भयभीत हो भाग गया।

भैया हो ! मैं भी ज्ञानवाद या वेदान्तका कुछ-कुछ मर्म समझने लगी हूँ। पगलीका अपना एक उपनिषद् भी है। उस निर्दय प्रियतमकी मतवाली आँखोंकी कसौटीपर अपने जीवनकाञ्चनको कसकर प्रेमका अन्तर्मर्म समझ लेना ही तो सच्चा ज्ञानवाद है। मेरे विरहोपनिषद्में तो बाबा, मानो या न मानो, यही लिखा है।

दर्शन-शास्त्रियोंकी लीला इस पगलीने खूब देखी है। ब्रह्म, जीव और प्रकृतिका इन बैठे-ठाले निठल्लोंने कुछ ऐसा बखेड़ा खड़ा कर रखा है कि सारे संसारकी शान्ति युगोंसे भङ्ग हो रही है। जितने भी यहां आये, सभी अपने-अपने नामको जोड़कर भ्रमकी एक-एक चिट्ठी छोड़ते चले गये। सच कहती हूं, यदि ये शब्द-जाली न होते, तो आज मानव-जीवनमें इतनी उलझन न बढ़ जाती। कहींका आस्तिक, कहींका नास्तिक ! निगोड़ोंके कितने भेद-प्रभेद बढ़ते चले जा रहे हैं। भला, उस 'अभेद'-का भेद समझनेमें भेद-प्रभेदकी आवश्यकता ही क्या ? शिव शिव ! शब्दोंका कैसा इन्द्रजाल फैला रखा है इन मायावियोंने ! अरे, वह ब्रह्म तो दीवाना है, और उसका रस पीनेवाले भी दीवाने हैं। प्रेमकी मस्तीका भेद ये भेदवादी क्या जानें ? ये दर्शन-शास्त्री मेरे प्यारेका दर्शन करा दें तो मैं उनको बदूं। हां, इन दर्शनोंसे कुछ मन-बहलाव जरूर हो जाता होगा। करें मन बहलाव, पर उस मधका मज़ा कैसे चखेंगे !

री प्रेम-पियाला भर-भर कर कुछ इस मयका भी देख मज़ा ॥

ओ शास्त्रियो ! डाल दो अपने सारे दर्शनोंको मेरे प्रेम-प्यालेमेँ । क्यों, पियोगे दो-दो घूंट यह इश्ककी शराब ? मायावियो, इसे पीकर मुक्त हो जाओगे मुक्त । उस दिलदारसे भेंट हो जाना ही तो मुक्तिलाभ है ।

देलदारसों जौलौं न भेंट भई, तबलौं तरिबौ का कहावतु है ?

दो घूँट पानी पी लूँ, फिर अपनी गाथा सुनाऊँ । तुम्हारा मन लगे या न लगे, मुझे तो पगली-पुराणका पारायण करना ही होगा । उन दिनों मैँने, स्मरण नहीं, किसके मुखसे धम्मपद सुना था । भगवान् बुद्धदेवपर तभीसे मेरी अगाध श्रद्धा है । दुःख-रहस्य और निर्वाण-रहस्यपर विचार करती हुई यह उद्भ्रान्त पगली आज भी तथागतकी पुण्य-स्मृतिपर श्रद्धाके चार आँसू चढ़ा दिया करती है । अहा !

बुद्धं शरणं गच्छामि,
धर्म्मं शरणं गच्छामि,
संघं शरणं गच्छामि ।

कैसे पवित्र मंत्र हैं ! पर कहां है वह बुद्ध, कहाँ है वह धर्म्म, कहाँ है वह संघ ! आज तो कुछ भी नहीं है । आज न वे भिक्खु हैं, न वे विहार ।

आजके बौद्ध उस त्यागि-श्रेष्ठ राजकुमारका त्याग भुला बैठे

हैं। 'दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्' का दिव्य उद्देश लेकर आज कौन निठल्ला, इस विज्ञान-युगमें, कठिन तपस्या करने बैठेगा? अबके बौद्धोंमें तो मुझे कहीं भी वैसी निर्वाण-पिपासा नहीं देख पड़ी। अहिंसा, संयम और सदाचारके उस अद्वितीय आचार्यके निर्लज्ज अनुयायी आज खुल्लमखुल्ला मांस-भक्षण, मद्य-पान और प्रमदा-रमण कर रहे हैं। अब बौद्ध-जगत्‌में वह सेवाभाव नहीं रहा। भारतमें बेचारोंका नाम-निशान भी नहीं पाया जाता। सनातन-धर्मी इस बौद्ध-संहारको महाविजयका नाम देते हैं। पर पगलीकी रायमें वैदिक-धर्मका ह्रास उसी दिनसे होने लगा, जिस दिन शंकराचार्यने बौद्ध-संहारका बीड़ा उठाया। अरे, रहने दो, भूल जाओ उस पगले बुद्धको, उन-गरीब भिक्खुओंको, उन भग्ना-वशेष-विहारोंको। अरे, कौन मुझे हठात् रुला रहा है! बहुत चाहती हूं, पर हँस नहीं सकती। हा बुद्ध! हा बुद्ध! उसे कैसे भूलूं। बुद्धं शरणं गच्छामि।

अरे, बचा लो भैया, बचा लो। इन मत-मतान्तरोंके द्वेषानलमें तो मैं झुलसी जा रही हूं। यह कौन कह रहा है कि 'न गच्छेज्जैनमंदिरम्'! क्यों, भाई! वेश्यालय, मद्यालय, मांसालय, इत्यादिमें जाना तो पुण्य है, और जैन-मंदिरमें जाना पाप? नाश हो इन धर्म—विडम्बक पाखण्डियोंका। भगवान् ऋषभदेव और महावीर स्वामीके उपदेशामृतको ये ज्वराक्रान्त

धर्म-वादी कड़ुवा बतलाते हैं। अरे, जैन सिद्धान्त वैदिक धर्मसे क्या पृथक् है ? लो, तुम लोग तो उन्हें नास्तिक कहने लगे हो।

जैनको नास्तिक भाखै कौन ?
परम धरम जो दया अहिंसा, सोइ आचरत जौन ॥
सत्‌कर्मनको फल नित मानत, अति विवेकके भौन।
तिनके मतहिं विरुद्ध कहत जो, महामूढ़ है तौन ॥
सब पहुँचत एकहि थल, चाहौ करौ जौन पथ गौन।
इन आंखिन सों तौ सबही थल सूझत गोपी-रौन ॥
कौन ठाम जहँ प्यारो नाहीं, भूमि अनल जल पौन।
'हरीचन्द' ऐ मतवारे, तुम रहत न क्यों गहि मौन ॥

ये मदोन्मत्त मतवादी कहीं चुप रह सकते हैं ? इन्हें खण्डन-मंडनसे फुरसत नहीं। ये तो राग-द्वेषमें मरते-मिटते आये हैं और उसीमें मरते-मिटते जायेंगे। खैर, पगलीको इनसे क्या मतलब ! पगलोंका न तो कोई खास मत-मज़हब होता है और न कोई खास जात-पांत। उनकी दृष्टिमें हिन्दू—मुसलमान, ईसाई-यहूदी, पंडित-पादरी, मंदिर-मसजिद, या गिरजा सभी एक हैं। अरे बाबा ! मेरे प्यारेके साथ प्रीति जोड़नेके ही तो ये सारे जुदे-जुदे रास्ते हैं। सचमुच मेरा साईं बहुरूपिया है। कभी हिन्दू बनकर दीदार दे जाता है तो कभी मुसलमान बनकर। कभी बौद्धके रूपमें दर्शन दे जाता है तो कभी जैनके रूपमें। किसीको उसकी झलक यहूदीके रूपमें

मिली है, तो किसीको ईसाई या पारसीके रूपमें। दुनियाको भेष बदल-बदलकर धोखा दे रहा है। पर दूसरोंको धोखा देनेवाले ही उससे धोखा खाते हैं। मत-मतान्तरोंके चक्करमें पड़नेवाले ही उस ठगसे ठगे जाते हैं।

हां, अच्छी याद आ गयी। एक दिन मैं उछलती-कूदती एक आलीशान मसजिदमें आ खड़ी हुई। जुमाका दिन था। सैकड़ों मुसलमान इस्लामके ठेकेदार मुल्लाओंके साथ नमाज़ पढ़ रहे थे। उस दिन मैं मंसूर,शमश तबरेज,मौलाना रूम और उमर खय्याम-की अलबेली मस्तियोंमें मस्त हो झूम रही थी। पर वहां किसी खुदापरस्त मुसलमानकी आंखमें इश्ककी खुमारी छाई नहीं देख पड़ी। अरे,उस खुमारीके लिये कसकीली आंख चाहिए,कसकीली! वह आंख ही कुछ और होती है। खैर, पगलीसे जब नमाज़ और इबादतका वह मखौल न देखा गया, तब उसने अपनी खंजड़ीके तालमें—'चढ़ा मंसूर सूलीपर पुकारा इश्कबाजोंको'—यह गजल झुम-झूमकर गानी शुरू कर दी। अरे, गज़ब हो गया! खुदाके इकलौते कृपापात्र मुल्ले मजहबी तअस्सुबमें आकर आपेसे बाहर हो गये। कहांकी नमाज़ और कहांकी इबादत! सब छोड़छाड़कर लगे मुझे बाजारके भाव पीटने। निगोड़े कहते थे, मसजिदके अन्दर खंजड़ी बजाने आयी है चुड़ैल, काफ़िरकी नानी, ही ही ही ही ही ही!! बाजे बजानेसे भी कहीं कुफ्र पैदा होता है, प्यारे?

हज़रत मुहम्मद तो, सुना है, मैदानेजङ्गपर घोड़े की पीठपर नमाज पढ़ लिया करते थे। उनके दिलपर तो कभी किसी बाजेकी आवाज़से ठेस नहीं पहुँची। पर, इन खूनी कट्टरोंके बीचमें मेरी बात कौन सुनता! सच्चा मुसलमान होना मुश्किल है। सच्चा मुसलमान देखो, क्या कहता है:——

मेरी मिल्लत है मुहब्बत, मेरा मज़हब इश्क है।
ख़ाह हूँ मैं क़ाफ़िरोंमें, ख़ाह दींदारोंमें हूँ॥

मसजिदमें उसे ढूंढ़नेको ही मैं गई थी। पर वह दिलबर वहाँ भी न मिला। झूठे पाखण्डियोंके घरोंमें उसका निवास कहाँ?

कबिरा दोनों राह न पाई।
हिंदुनकी हिंदुआई देखी, तुरकनकी तुरकाई॥

अरे, हँसते क्यों हो? सच तो कहती हूँ। मेरी समझमें तो दोनों ही गुमराह हैं। ईश्वर और धर्मके नामपर एक गाय काटता है, तो दूसरा बकरा। घृणित पशु-हत्याको एक कुरबानी कहता है, तो दूसरा बलिदान! हत्या दोनों ही हैं। चाहे नाग-नाथ कहो, चाहे सांप-नाथ। अरे, हिन्दू और मुसलमानमें भेद ही क्या है? एक ही बापके ये नादान बच्चे आपसमें कैसे लड़ मरते हैं। झूठे मंदिरों और झूठी मसजिदोंके पीछे हाय! मेरे साईंके कितने सच्चे मंदिर और सच्ची मसजिदें आयेदिन गिराई जाती हैं। डाढ़ी-चोटी, बाजा-मसजिद, पीपल-ताजिया या राम-रहीमके नामपर नित्य

ही सिरफुड़ौअल हुआ करता है। जिसके पालन करनेमें खून-खच्चर हो, उसे ही ये बेवकूफ हिन्दू और मुसलमान आज एकमात्र धर्म या मजहब समझ रहे हैं। शोक है, अहंकारका बलिदान या खुदीकी कुरबानी करनेको कोई माईका लाल आगे नहीं बढ़ता। मुझे क्या पड़ी है! लड़े जाओ मजहबी लड़ाइयां! इतना लड़ो कि लड़ते-लड़ते मर मिट जाओ। वेद और कुरानको खूनकी नदियोंमें बहा दो। मन्दिरों और मसजिदोंको स्वार्थकी आगसे जला डालो। पंडितों और मुल्लाओंके ही मत्थे धर्म-मजहबका ठेका मढ़कर रहना!

आज यदि इन अगणित मत-मतान्तरोंकी चींचीं-पोंपों दुनियामें न मची होती, तो लोग पेटमें दो रोटियां डालकर सुखकी नींद तो सोया करते। हाय-हाय! मेरे प्यारेका चांद-जैसा सुन्दर मुखड़ा इन्हीं काले बादलोंकी ओझलमें छिप गया है। बिना उस प्यारे चेहरेके धर्म या मजहब जिस्म रखता हुआ भी बेदिल और बेजान है। ऐसे मुर्दे धर्मपर लड़े मरते हैं ये पगले कुत्ते! खूनकी नदियां बहाते हैं ये नादान धर्मात्मा! बिना उस चांदके यह मजहबी काली रात मुझे खाये जाती है। न जाने, वह प्यारा चांद अब कब देखनेको मिले! कौन इस दीवानीका दर्द जानने आयगा? दुनिया तो तमाशबीन है।

हे री, मैं तो प्रेम-दिवानी, मेरा दरद न जानै कोय।

अरे, जानकर कोई करेगा ही क्या। मुझे तो अपने मीठे दर्दमें ही मज़ा आ रहा है। मेरा जन्मही कसक-रस लेनेको हुआ है।

हे री, मैं तो प्रेम-दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, केहि विधि सोना होय।
गगन-मंडल पै सेज पियाकी, केहि विधि मिलना होय॥
घायलकी गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहरिकी गति जौहरि जानै, की जिन जौहर होय॥
दरदकी मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोय।
'मीरा'की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया होय॥

भैया, सचमुच मैं इन मजहबोंसे तङ्ग आ गई हूँ। ईसाई-धर्मकी बात पूछते हो? अच्छा, सुनो। जरा सिर खुजला लूँ। थोड़ा पानी देना। अच्छा, फिर पिलाना, पहले सुन लो। महात्मा ईसापर किसकी भक्ति न होगी? सेवा-धर्मके तो वे अवतार थे। उनके गिरि-शिखरपरके दिव्य उपदेश किस गीतोक्तिसे कम पवित्र हैं? पर आज इञ्जीलकी स्वर्गा-शिक्षाओंको कितने ईसाई मनसा-वाचा-कर्मणा मानते हैं? प्यार करना दरकिनार, आज तो पड़ोसीके गलेपर छुरी चलाई जाती है। आज कौन पागल अपकारके बदले उपकार करेगा? महात्मा ईसाके अद्वितीय बलिदानका रहस्य आज कितने ईसाई समझते हैं? मसीहका पाकदामन पकड़कर आज कितने ईसाई सच्चे दिलसे दीन-दुर्बलोंकी निःस्वार्थ

सेवा कर रहे हैं ? परमपिताके उस दुलारे बेटेने तो अपने रक्तसे जगत्‌के पाप-संताप धोनेका प्रयत्न किया था, पर, हाय ! आज उसके निर्लज्ज अनुयायी अपने प्यारे भाइयोंके ही खूनसे अपने हाथ रंग रहे हैं ! इतना ही नहीं, ये ईसाई विश्वमैत्री और दुनियाभरके भाई-चारेका भी ढोंग रच रहे हैं ! शान्ति-स्थापनाके नामपर राष्ट्संघकी रचना कर रहे हैं ! पगलीकी रायमें तो ईसाई पादरी प्रभु मसीहका दिव्य संदेश सुनानेकी ओटमें प्रायः शैतानी नीतिका ही संसारके कोने-कोनेमें प्रचार कर रहे हैं। मैं आज भी गिरजाघरोंमें जाती हूं। प्रार्थनामें भाग लेने नहीं, सिर्फ भारी-भारी घंटोंकी घनघनाहट सुननेके लिये ही मैं वहाँ पहुँच जाती हूँ। बात यह है कि हृदयहीन प्रार्थनाओंके आडम्बरसे घंटेकी आवाज़ कहीं ज़्यादा मीठी मालूम होती है। पगली होती हुई भी मैं संगीत-रसिका हू। उस हृदयविहारीकी बांसुरी सुन-सुनकर मैं संगीतपर मुग्ध हो गई हूँ।

उस बैरिन बांसुरीने ही तो मुझे पगली बना दिया है। मैं किस गिनतीमें हूं, उस निगोड़ीने न जाने किस-किसको दीवानी-फ़कीरनी नहीं बनाकर छोड़ा !

कितीं न गोकुल-कुलबधू, किहिं न काहि सिख दीन।
कौने तजी न कुल-गली, ह्वै मुरली-सुर-लीन॥

बाँसुरी भी क्या अजीब मोहिनी है ! उसे विषकी बेल कहें

या अमृतकी धार। वह गाती भी है और रोती भी है। प्यारेके मुंह-से-मुंह लगाकर सदा प्रेममें डूबी रहती है। प्यारेके प्रेमका रस उसे चखनेको तभी मिला, जब उसने अपने तनको खुदीसे खाली कर दिया। इसीलिये पगली! तू भी—

दिलका हुजरा साफ़कर प्यारेके आनेके लिये।
ध्यान ग़ैरोंका हटा हस्ती मिटानेके लिये॥

बाँसुरीकी वह फूंक मुद्दतसे कानोंमें नहीं पड़ी। तबसे न जाने कितने बाजे न सुने होंगे, पर वैसा रस फिर कहीं नहीं बरसा। ओ वंशीवाले! तुमसे कौन कहने गया था कि बाँसुरी फूँककर मेरी यह हालत कर देना? मेरा पहलेका जीवन क्या बुरा था! कम-से-कम सिरपर यह इश्कका भूत तो सवार न था! दिलमें न कोई दर्द था, न कसक थी, और न आंखोंमें यह जहरीला नशा ही छाया था। ख़ैर, जो किया सो किया, अब अपनी झलक कब दिखाओगे प्यारे? वह मोहन मुरली कब फूंकोगे, मोहन?

होत रहै मन यों 'मतिराम', कहूं बन जाइ बड़ो तप कीजै।
ह्वै बनमाल हियें लगिये, अरु ह्वै मुरली अधरा-रसु लीजै॥

फिर मनोराज्यमें विचरने लगी हूँ। इस जीवनमें यह सब होनेका नहीं। कहाँतक आशाका अंचल पकड़े रहूँ।

क्या कहती थी, क्या कहने लगी। हाँ, ईसाईधर्मकी बात कह रही थी न? कोई धर्म हो, सत्यको तो आज कोई भी आश्रय

नहीं दे रहा है। आज तो मिथ्याचारका बोलबाला है। भेदप्रभेदोंने तभी तो इन धर्मोंको क्षत-विक्षत कर डाला है। अरे! कुछ ठिकाना! कितने भेद-प्रभेद बढ़ गये हैं। हिन्दूधर्मके अन्दर शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, बौद्ध, जैन आदि पचासों सम्प्रदाय हैं। फिर इनके भी सैकड़ों भेद हैं। पंथी भी अनेक हैं—कबीर-पंथी, दादूपंथी, गोरखपंथी, नानकपंथी आदि। इन संप्रदायों और पंथोंने कैसी उलझनें डाल रखी हैं! उधर शिया, सुन्नी, अहमदिया आदि फ़िरकोंने इस्लामकी जड़ हिला डाली है। ईसाईधर्म भी खंडखंड कर डाला गया है। मेरे भोलेभाले साईंके दरबारमें पहुँचनेका सीधा-सादा लगनका दरवाज़ा बन्द करके इन शब्दजालियोंने कैसे-कैसे टेढ़े-मेढ़े, ऊँचे-नीचे, ऊबड़-खाबड़ रास्ते निकाल रखे हैं। फिर मज़ा यह कि सभी अभेदियोंने भेद मिटानेका स्वांग तो रचा, पर खुद भी एक-एक अपने नामका भेद पैदाकर मुस्कुराते हुए चले गये। अब बताओ, भूखा-प्यासा, थका-माँदा राहगीर वहाँतक किस राहसे पहुँचे! उस प्यारेका दर्शन उसे कैसे मिले!

अरे बाबा, भुक्खड़ भारतमें तो आज भी नये-नये संप्र-दाय बनाये जा रहे हैं। मैं किसीको दोषी नहीं मानती। पगली-की दृष्टिमें तो वे सभी धर्माचार्य ब्रह्माके अवतार हैं। राम-मोहनराय, दयानन्द, राधास्वामी आदि कुछ-न-कुछ करके ही गये

हैं। अपने-अपने स्थानपर सभी सुधारक, सभी उद्धारक और सभी पूजनीय हैं। सबको हाथ जोड़ती हूँ। धन्य है, उनकी खण्डन-मंडनात्मिका शक्ति! धन्य है उनकी धर्म-वीरता! पगली की बातका बुरा न मानना। उन सब महापुरुषोंने, ईश्वरके उन सब लाड़ले सुपूतोंने कम-से-कम साधारण जनताके साथ तो एक प्रकारसे अन्याय ही किया है। भूले-भटके राहगीरोंको और भी चक्करमें डाल दिया है। अरे, हाँ, सीधे-सादे अपढ़ और गँवार लोग उन पहुँचे हुए महात्माओंकी ताड़-जैसी ऊँची और समुद्र-जैसी गहरी बातें कैसे समझ सकेंगे!

धत् तेरी पगलीकी! कुछ ख़्यालही नहीं रहता! तुझे इन मत-मतान्तरोंसे क्या मतलब है? झगड़ने दे उन सब झगड़ालुओं-को। झगड़-झगड़कर ही उनको मुक्ति मिलेगी। कर्कशा स्त्रियाँ कलह-साधनाएँ साध-साधकर सीधे स्वर्ग सिधारेंगी। पशु-पक्षी भी आपसमें लड़-मरकर मुक्त हो जायँगे। तू उन कलह-प्रिय तर्कशास्त्रियोंको क्यों झगड़नेसे रोक रही है? अरे, सच है, बाबा! सच है!!

धरम सब अटक्यौ याही बीच।
अपुनी आपु प्रसंसा करनी, दूजेन कहनो नीच॥
यहै बात सबने सीखी है, का बैदिक का जैन।
अपनी-अपनी ओर खींचनो, एक लैन नाहिं दैन॥

आग्रह भरयौ सबनके तनमें, तासों तत्व न पावैं।
'हरीचंद' उलटीकी पुलटी अपनी-अपनी गावैं॥

दूरसेही हाथ जोड़ती हूँ पंडितोंको, मुल्लाओंको और पादरियोंको दूरसे ही नमस्कार करती हूँ उनके बड़े-बड़े भीमकाय ईश्वर-कृत ग्रन्थोंको!

मैंने तो उनके सारे वेद-शास्त्रों एवं अवस्ता-कुरान और इंजीलमेंसे सिर्फ ढाई अक्षरका एक महामंत्र चुन रखा है। उसी-की कसौटीपर मैं पण्डितों, शास्त्रियों, मुल्लाओं और पादरियोंको कसा करती हूँ। यह भी मेरा एक पाखण्ड है। खुद अपनेको तो उस कसौटीपर कसा नहीं, चली दूसरोंको कसने! सुनोगे, तो सुनाऊं वह मंत्र। अच्छा, लो सुनो:—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेमका पढ़े सो पण्डित होय। *

बड़ी भूल हुई। क्यों यह हत्यारा मंत्र मुँहसे बाहर निकल पड़ा। इसी ढाई अक्षरी सत्यानासी मंत्रने तो मेरी यह गत की है। करूँ क्या, रांड़ जीभ अपने बसकी नहीं। बहुत चाहती हूं कि चुप हो रहूं, पर कुछ-न-कुछ आयँ-बायँ-सायँ बकही आता है। यह मंत्र क्या है, मेरे मनकी व्यथाका बीज है। किसीको अपनी व्यथा सुनानेसे कुछ लाभ?

* कबीर

मनहीं राहिये गोय, 'रहिमन' निज मनकी विथा।
बांटि न लैहैं कोय, सुनि इठलैहैं लोग सब॥

पर मौन भी कबतक साधे रहूँ। चुप रहनेकी भी तो कोई हद होती है! अब चुप रहना मेरे बसका नहीं। अब तो दिन-रात खूब बकती ही फिरूँगी। खूब बनाया! क्या कहना!

अब नाहिं प्रान रोके रहत।

रहत रोके प्रान नाहिं अब, विषम बेदन सहत॥
छटपटात अधीर छिन छिन, धीर नाहिंन गहत।
मनहुं पंछी पींजरा तें उड़न अबहीं चहत॥
रूप-दरस-पियास निसि-दिन, निबल नैननि दहत।
ध्यान पथतें हटत नाहिं वह, चैन चित नाहिं लहत॥
विकल विरह तरंगिनीमें, हाय! कबतें बहत।
गोय मनकी मनहिंमें 'हरि' विथा नाहिंन कहत॥

सारे मत-मतान्तर वेचकर मैं तो अब बस एक प्रेम बिसाहना चाहती हूँ। पर ये धर्म-मज़हब तो प्रेमके मोलको न चुका सकेंगे। वह बड़ी महँगी चीज़ है। कहाँ ये तीन कौड़ीके तुम्हारे मज़हब और कहाँ वह प्यारेका प्रेम! कैसे मिले वह आबे इश्क़! इस मुर्दे दिलको जबतक उस प्रेम-रससे नहीं तर किया, तबतक ख़ुदीकी आगमें जल-जलकर तड़पना पड़ेगा। धर्म-शास्त्रियोंकी मरुभूमिपर उस रसकी धारा कहीं बहती देखी

है ? वह आबे इश्क तुम्हारे मज़हबी रेगिस्तानपर ठहराने नहीं जाता। बड़ी आफ़त है ! पगलीकी प्यास तो उसी रसकी प्याली-से बुझेगी। यह तुम्हारा खारा समुद्र मेरे किस कामका ! तो वह प्रेम--प्याली, बताओ, कहाँ मिलेगी। मैं उसीको चाहती हूँ। चाहनेसे क्या होता है ? क्या सिर्फ़ चाहने हीसे वह प्यारी प्याली मिल जायगी ? क्यों नहीं, वैसी चाह चाहिए। कैसी ? अरे, वही पपीहे-जैसी, अहा !

चातक 'तुलसी के मते' स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम-तृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि॥
प्रीति पपीहा पयद की, प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि॥
मान राखिबो मांगिबो, पियसों नित नव नेहु।
'तुलसी' तीनिउ तब फबैं, जौ चातक मत लेहु॥

छोड़ री पगली ! छोड़, इस चातक-चर्चाको। कहांसे इस कसाई पपीहेका नाम याद आ गया ! मेरी तो कुछ विचित्र दशा हो रही है। प्रीतिकी बातें, भुलानेपर भी याद आही जाती हैं ! यह हत्यारी प्रीति पगलीका पिंड लेकर ही छोड़ेगी।

भैया, बहुत घूमी, बहुत फिरी, पर उस लापतेका पता न चला। मुझे तो इस मतलबी दुनियामें उस प्यारेके दीदारके लिये

शायद ही कोई बेवकूफ़ तड़पता हुआ मिला हो। दुनियादार और दीदारमें मुझे तो कोई फ़र्क नहीँ दिखाई दिया। ये दोनों ही नाम प्रियतमसे भेंट होनेके पहलेके हैँ। इस लोगसे उस लोकतक प्रायः सब नास्तिक-ही-नास्तिक मिले। बेचारे मुँह-फट चार्वाकका नाम तुम्हारे धर्म-धुरन्धरोंने योंही बदनाम कर रखा है। नास्तिक कौन नहीं है? आस्तिककी भी क्या ही विचित्र परिभाषा मानी जा रही है! कितने दग़ाबाज़, बेईमान, झूठे, दुराचारी, और नीच आज आस्तिक माने जा रहे हैँ! अरे, वे लक्ष्मीके लाडले हैँ न? अरे, वे किसी संप्रदायमें दीक्षित हो चुके हैं न? बस, आस्तिकताके यही तो प्रमाण-पत्र हैँ। सचाई, ईमानदारी और सच्चरित्रताको पूछताही कौन है? 'मैं ईश्वरको मानता हूँ'—इतनाही कह देना आस्तिकके लिये काफ़ी है। सदाचारी अप्रत्यक्षरीतिसे भलेही आस्तिक हो, पर समाज उसे आस्तिक न मानेगा। समाज तो प्रत्यक्षरीतिसे घोषणा कर देनेवालेको ही आस्तिकका रूप देगा, भले ही वह दुराचारी हो। बेचारे चार्वाकने स्पष्ट शब्दोंमें ईश्वर-सत्ताका निषेध किया। बस, यही प्रमाण आस्तिक-समाजके सामने उसकी निन्दात्मक आलोचनाके लिये काफी है। अब पगली एक प्रश्न करती है। मेरे धर्म-प्राण महात्माओ! तुम सब लोग अप्रत्यक्ष रीतिसे क्या नास्तिक नहीँ हो? यदि सर्वान्तर्यामी ईश्वरकी विश्व-व्यापिनी सत्ताको तुम अन्तःकरणसे मानते होते,

तो आज तुम्हारे इस जीवनमें पाप-संतापका यह भयंकर समुद्र लहराता न दिखाई देता। ईश्वरके अस्तित्वके ज़बानी जमाखर्च-से कुछ फ़ायदा? इससे तो, पगलीकी रायमें खुल्लमखुल्ला अपनेको नास्तिक कह देना कहीं ज़्यादा अच्छा है। कम-से-कम सत्यकी व्यर्थ हत्या तो न होगी? बाबा! तुम दंभी आस्तिकोंको मैं दूरहीसे हाथ जोड़ती हूँ। आस्तिक बनने चले हैं हरामज़ादे! ग़रीब ईश्वर और धर्मकी ओटमें शिकार खेलने आये हैं मायावी! खुदापरस्त बनने चले हैं ये दग़ाबाज़ खुदीपरस्त! प्यारेकी प्यारी शकल देखनेकी तो छटपटाहट है नहीं, आस्तिकताका दावा करते हैं! कैसा अन्धेर है! कैसी मक्कारी है!!

मेरी समझमें तो कुछ यह आता है कि वह दिलवर 'अस्ति और नास्ति' इन दोनों ही बखेड़ोंसे परे है। अरे, वह तो

गोकुल गांवको पैंडोही न्यारो।

आस्तिकों और नास्तिकोंके युक्तिवादसे कहीं आजतक किसीने उस प्यारे चांदको देखा है? कहाँ युक्तिवाद और कहाँ वह प्रेमकी मस्ती!

युक्ति सों हरिसों का सम्बन्ध?
विना वात ही तरक करैं क्यों चारहु दृग के अंध॥
युक्तिन कौ परमान कहा है, ये कबहूं बढ़ि जात।
जाकी बात फुरै सो जीतै, यामें कहा लखात॥

अगम अगोचर रूपहिं, मूरख ! युक्तिन में क्यों सानै ?
'हरीचन्द' कोउ सुनत न मेरी, करत जोइ मन मानै ॥

जो जिसके मनमें आवे खुशीसे करे—मैं क्यों बाधा दूँ। कमाये खाये जाओ ईश्वर और धर्मके नामपर। मन्त्र-तंत्र, जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि सभी आस्तिकतामें शामिल किये जाओ ! खूब पैसे कमाओ, खूब नाम कमाओ ! ठगी ही सब धर्मोंका सार है। विश्वास है, तुम्हारा सिक्का सभी जगह चल जायगा ! आस्तिकताका पट्टा बाँधकर जहाँ चाहो तहाँ चले जाओ, कोई रोक-टोक नहीं ! हाँ, सिर्फ उस प्रेम-पुरीके भीतर प्रवेश न कर सकोगे। सो, वहाँ तुम्हें क्या करने जाना। वहाँ तो कोई बेवक़ूफ़ दीवाना जाता है, तुम-जैसे चतुर और धर्मात्मा नहीँ। और, वहाँ तो नहीं, पर यहाँ तुम प्रेमका भी स्वाँग रच लोगे। खूब शृंगार वर्णन करना ! शृंगार ही तो प्रेम है ! जग-त्पिता और जगन्माताका भी रति-वर्णन निर्लज्जभावसे किये जाना, प्रेम-साधना सिद्ध हो जायगी ! सारांश यह कि तुम दो-चारही नायिका-भेदके ग्रन्थ पढ़-सुनकर एक ऊँचे-प्रेमी बन जाओगे। बस, और क्या चाहिए ! अरे अन्धो ! उस प्रियतमका मिलन-रहस्य समझ लेना शतरंज या चौसरका खेल नहीँ है। वह दिलवर ऐसोंसे कभी नहीँ मिलता, जो दीन और दुनियाके बन्धन तोड़-ताड़कर उसके हाथमें अपना मन-मानिक सौंप देनेमें

हिचकते हैं। वह तो उन्हींको अपने रसमें सराबोर करने जाता है, जो अपनेको नयकी तरह खुदीसे खाली कर बैठते हैं। इससे, भैया, अपना भला चाहो तो प्रेमीका स्वाँग न बनाना। प्रेम नकल करनेकी चीज़ नहीं है। उसकी साधना बड़ी कठिन है। वह तो कोई वस्तु ही और है।

पंथ प्रेम कौ अटपटो, कोइ न जानत बीर।
कै मन जानत आपुनो, कै लागी जेहि पीर॥

वह तो भावका भूखा या प्रेमका गाहक है। वह हर कहीं, हर जाति या हर धर्मवालेको अपना दिल देनेको तयार रहता है। पर झूठे और दग़ाबाज़को, चाहे वह किसी भी देश, किसी भी जाति या किसी भी धर्मका क्यों न हो, वह हरगिज़-हरगिज़ मिलनेका नहीं। अरे, इन्हीं पाखंडियोंके कचरेमें तो मेरा अनमोल हीरा खो गया है—

मेरा हीरा हिराय गा कचरे में।
कोइ पूरब कोइ पच्छिम ढूँढै, कोइ पानी कोइ पथरे में।
मेरा हीरा हिराय गा कचरे में॥

इस कूड़े-कचरेमेंसे कैसे अपना हीरा खोज निकालूँ? काशी, मक्का, जेरूसलम आदि सभी स्थानोंपर मूँड़ मार चुकी, पर कहीं भी उसका पता न चला। इसलिये मुझे तो यही ठीक जँचता है कि—

जा पड़े मस्त उस शोख की जिस बस्ती में।
वही गोकुल है हमें और वही वृन्दावन॥

अब कहीं न जाना न आना। उसे मिलना होगा तो यहीं आकर मेरी आँखोंमें अपनी मस्ती भर देगा। जबतक उस निष्ठुरने अपनी लगनकी-चिनगारी मेरे दिलपर नहीं डाली, तबतक मेरी वासनाओंका यह गीला ईंधन गीलाही रहेगा। कामाग्निसे कहीं वह जल सकता है? उससे तो वह और भी गीला होता जायगा। ये मुई वासनाएँ ही तो उस लापतेको और भी लापता बनाकर मुझे इधर-उधर भटका रही हैं। वह चिनगारी फिर इस दिलपर कैसे पड़े! सच्चे विरह-रँगीले ही उस लगन-चिनगारीके अधिकारी हैं। यहाँ वह विरह-रंग कहाँ? विरह-रँगीली होलीके खिलाड़ी ही उसकी झलक-झाँकी देखते हैं। कैसी होती होगी वह होली! अहा!

फाग खेलन कहँ जाऊं,
घर ही में मेरो खिलारी बसत है॥
तन तंबूर, सुरत सारंगी, मन ही मन मंजीर बजत है।
गरद गुलाल लाल-चरननकी, नैनन सों रंग प्रेम झरत है॥
मेरे खिलारी सों सब जग खेलै,कोइ रहीम कोइ राम कहत है
'दास'कहै कोइ जित-तित डोलै मेरो मन मो पियसों मिलत है

यह खूब होली हुई। सावन-भादोंमें होली गा रही हूँ! फिर

भी मेरे पगली होनेमें तुम्हें सन्देह है ? क्या कह रही थी ? हाँ, विरह-रसकी बात चल रही थी। विरह-नीर ही मेरी प्रीति-बेलिको लहलही करेगा। झुलसकर सूख गयी है न! उसे अब उसी नीरसे सींचूँगी।

ईश्वर करे, यह सारी दुनिया प्रीति-बेलिमें उलझ-पुलझकर अपनी हस्ती मिटा दे। वेद-शास्त्र, कुरान-बाइबिल, अवतार-पैग़म्बर आदिकी पेचीदा उलझनोंसे तो प्रीति-बेलिकी उलझन फिर भी ज़्यादा सीधी और सुलझी हुई है। मुबारक हो यह इश्ककी उलझन!

अपनी टेकही तो है! एक-न-एक टेक तो सभी पकड़े चले आ रहे हैं। मैं उस संगदिलसे मिलनेकी टेक पकड़े हूँ।

कोइ काहू में मगन, कोइ काहू में मगन।
मैं तो वाही में मगन, जासों लागी है लगन॥

जिसका जी जिसमें लग जाता है, वह उसे मिलता भी अवश्य है। सोने और सुहागेको देख लो। प्रेमकी आँचमें तपकर दोनों कैसे एकरूप हो जाते हैं! तो क्या वह मेरी टेककी लाज न रखेगा ? कौन जाने, वह क्या करेगा!

सच मानो भैया, उस मस्तीका मज़ा मुझे प्रेम-प्याली ही दे सकेगी। कैसी होगी वह लाली!

लाली मेरे लालकी, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन जो गई, मैं भी हो गई लाल॥ *

चूल्हेमें जाय तुम्हारा सोमरस और तुम्हारी सुधा। आगमें फेंक दो अपना आबेहयात। यह सब लेकर मैं क्या करूँगी? मुझे तो, बस, उसी प्रेम-वारुणीकी प्याली चाहिये। एक उसी प्यालीकी चाहमें तो दीन और दुनियाको दुतकार दिया है! प्रेम-वारुणी और भी कई पगलोंने पी है। नारद, शुकदेव, चैतन्य, कबीर, मीरा आदि सभी उस मदिरामें मत्त रहते थे। उमर खय्याम, शमस तबरेज और मौलाना रूम भी उस प्यारी प्याली-को दिनरात ओठोंसे लगाये रहते थे। क्या कहना है उनकी मस्तीका! उसी मस्तीसे तो तुम्हारी सुधा निकली है और उसी मस्तीसे वह आबेहयातका चश्मा बह रहा है। अहा!

ओहि मद तेहि कहाँ संसारा।
की सो घूमि रह, की मतवारा॥
सो पै जान पियै जो कोई।
पी न अघाइ, जाइ परि सोई॥
जा कहँ होइ बार इक लाहा।
रहै न ओहि बिनु, ओही चाहा॥

* कबीर।

अरथ दरब सो देइ बहाई।
की सब जाहु; न जाइ पियाई॥
रातिहु दिवस रहै रस-भीजा।
लाभ न देख, न देखै छीजा॥ *

देखूं, कब पीनेको मिलती है वह प्रेम–प्याली! अच्छा, लो, अब जाओ। जाओ, जाओ, नहीं तो फिर पत्थरोंकी मार पड़ेगी। किसी दिन फिर इसी घाटपर मिलूंगी। पगलीका प्रलाप फिर कभी सुनना हो, तो यहीं आ जाना। लो, जाओ, भागो।

मेरा हीरा हिरायगा कचरेमें।
कोइ पूरब कोइ पच्छिम ढूँढ़ै,कोइ पानी कोइ पथरेमें।
मेरा हीरा हिरायगा कचरेमें॥

——

* मलिक मुहम्मद जायसी।

दूसरा प्रलाप



क्या पूछते हो कि तेरे सामाजिक विचार क्या हैं, पगली ? हे हे ! मेरे सामाजिक विचार पूछते हो ! क्या हैं, कुछ नहीं। मेरी तो सारी बातें ऊटपटाँग हैं। जो जब मनमें आया, वही बक गई। चंद रोज़के लिये इस हाटमें क्या बेचूं और क्या खरीदूँ ? किसे बुरा कहूँ, किसे भला ? कल प्रलय होना हो, सो आज हो जाय। खूब उथल-पुथल हो। सूरज और चांद टुकड़े-टुकड़े होकर पृथ्वीपर गिर पड़ें। लोकसे लोक टकरा जायँ। विप्लवकी बाढ़ आ जाय। क्रान्तिकी आग, राम करे, तुम्हारे धर्म, तुम्हारे समाज और तुम्हारे स्वार्थ-परमार्थको जलाकर खाक कर दे। नाकों दम कर रखा है बेहूदोंने। मेरे सामाजिक विचार पूछते हो ! तुम लोग तो एक पगलीकी भी गालियां नहीं सुन सकते। समाजमें क्रान्तिकारी भी कहे जाओ और ऊपर फूलोंकी वर्षा भी होती जाय ! खूब क्रान्ति करोगे ! तनिकमें बुरा मान बैठते हो। मन-ही-मन क्यों मुसकरा रहे हो। खूब खिलखिला कर हँसो। मैं गाती हूँ, तुम हँसो। पगलीके मनमें तो आज यह गीत बस रहा है। लो, हँसते-हँसते सुनो—

है बहारे बाग़ दुनिया चन्द रोज़ ।
देख लो इसका तमाशा चंद रोज़ ।
बाद मद्‌फ़न क़ब्रके बोली कज़ा ।
'अब यहाँपर सोते रहना चन्द रोज़' ।
फिर तुम कहाँ, औ मैं कहाँ ऐ दोस्तो !
साथ है मेरा तुम्हारा चंद रोज़ ॥
ऐ मुसाफ़िर ! कूचका सामान कर ।
इस ज़हाँमें है बसेरा चन्द रोज़
पूछा लुकमांसे, 'जिया तू कितने रोज़ ?'
दस्ते हसरत मलके बोला, 'चन्द रोज़' ॥
क्यों सताते हो दिले बेजुर्मको ?
ज़ालिमो, है यह ज़माना चन्द रोज़ ॥
याद कर तू ऐ नज़ीर, क़ब्रों के रोज़ ।
ज़िंदगीका है भरोसा चन्द रोज़ ॥

अगर वह प्यारा चाँद किसी तरह आंखोंमें आ गया, दिलमे समा गया, तो समझ लो, ज़िन्दगीके ये चन्द रोज़ बनाते बन गये । फिर वही चाँद ! बहुत भुलाती हूँ, पर भूलता ही नहीं । पर उसे क्यों भुलाऊँ, वह भूल जानेके लिये थोड़े ही है ! जो भुला देना चाहिए, वह तो भूलती नहीं । उसे भूल जानेकी बात करती हूँ ! यही तो पागलपन है ! रोम-रोममें रमा हुआ मेरा राम कहीं भुलाया जा सकता है ?

उरझि रह्यौ मनमें तू, मेरो मन उरझावनवारो।
मेरी-तेरी या उरझनकों, को सुरझावनहारो।

भाइयो, उसे खोजनेमें क्या मेरा साथ दोगे? अरे, तुम भी पागल हो जाओ। इस चार दिनकी ज़िंदगीमें और करोगे ही क्या! पागल हो जानेमें ही सार है। चलो, पगलोंकी एक टोली बना डालें। अरे, हाँ,

फिर तुम कहाँ, औ मैं कहाँ ऐ दोस्तो!
साथ है मेरा तुम्हारा चन्द रोज़।

तुमसे कोई पूछे कि किस जातिके हो, तो कहो कि पगली जातिके। क्यों यही जवाब दोगे न? न दोगे; तुम्हें तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होनेकी ऐंठ है! तुम ठहरे वर्ण-व्यवस्थापक! और पगले? वहाँ कहाँ जात-पाँतका बखेड़ा। तुम्हारा मन तो आज समाजको खण्ड-खण्ड करनेमें लगा हुआ है। बड़े वीर हो यारो! सहस्रों जातियाँ–उपजातियाँ रच डालीं। गुण और कर्मको पछाड़ दिया। तुम्हारे समाजमें तो माताके गर्भसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका अवतार हुआ करता है। जात-पाँतकी छाप जन्मके साथ ही किसीके माथेपर तो किसीकी पीठपर लगी आती है। निरक्षर भट्टाचार्य भी ब्राह्मण ही रहेगा, शूद्र नहीं हो सकता। इसी तरह सत्यनिष्ठ और सदाचारी शूद्र कभी ब्राह्मण हो ही नहीं सकता। अन्त काल-

तक बेचारा चांडाल ही गिना जायगा। कैसा भव्य न्याय है! पगलीकी समझमें तो चतुर्वर्णकी परिभाषा कुछ ऐसी आती है—

बोलो, क्या होना चाहते हो—ब्राह्मण? अच्छा, सबसे पहले मिथ्याचार सीख लो। असद्‌वादी और व्यर्थ द्वेषी बन जाओ। खूब दान-दक्षिणा लिये जाओ। अपनेको ब्रह्माकी चोटी मान लो। विद्याको मार भगाओ। विश्वभरमें छुवा-छूत फैला दो। आठ कनौजिये, नौ चूल्हेका डंका पीटते जाओ। छिपे-छिपे मद्य-मांसका भी सेवन करते जाओ। बस, इन्हीं दो-चार साधनाओंसे 'द्विज-श्रेष्ठ' हो जाओगे।

या क्षत्रिय बनना चाहते हो? अच्छा, वही सही। नित्य नियमपूर्वक मद्य-पान और मांस-भक्षण करो। बिना इस साधनाके बल और पराक्रम प्राप्त होना असंभव है। फिर वारां-गनाओंका पादार्घ न करो। जबतक उन कुतियोंके पीछे न लगोगे, तबतक सिंह-सुपूत तुम हो ही नहीं सकते। छिप-छिपकर चिड़ियों और मछलियोंको भी मारा करना। बहादुरी और दिलेरीका तो अपनी ही जातिको एकमात्र ठेकेदार मान लेना, देखो, इसमें भूल न हो। हां, यह याद रहे कि तुम्हारी वीरता ग़रीब निहत्थोंको ही पीसनेके लिए हो। कहीं शक्तिशालियोंका मुक़ाबला न कर बैठना। उनका तो चरण-चुम्बन ही किया करना। 'क्षत्रिय-कुल-भूषण' होनेके यही तो सब उपाय हैं!

शायद तुम वैश्य बनना चाहते हो। अच्छा, उसका भी साधन सुनो। चमड़ी भले ही चली जाय, पर दमड़ी न जाने पाय। देशहितके लिए खबरदार! भूलकर भी कभी एक टका न देना। वाणिज्य और सत्यमें कभी मेल न होने देना। वह रोज़गार ही कैसा जो सचाईके साथ किया जाय! अस्थि-कंकालोंके रक्तसे पूंजीपतियोंको पुष्ट करना ही नक़दनारायणके उपासकोंका परम धर्म है। बस, अर्थपिशाच वणिक्का यही पगली-पुराणमें लक्षण लिखा है।

और शूद्र! यह टेढ़ी खीर है। बोलो, द्विजातिके अनन्य सेवक बनोगे? उच्च वर्णोंकी पवित्र पादुकाओंसे दलित होना, कहो, पसंद करोगे? क्या हुआ जो गाढ़े समयपर तुम अपनी जानपर खेलकर धर्मकी रक्षा किया करते हो! शूद्रत्वका तुम्हें पुरस्कार भी तो अच्छा मिलेगा! वेद-मंत्र तुम्हारे कानमें यदि भाग्यसे पड़ गया तो वर्णव्यवस्थापक तुम्हारा खूब सम्मान करेंगे। तुम्हारे भाग्यवान् कर्ण-कुहरोंको शीशेका पीयूष-पान कराया जायगा। गले-गलाये शीशेका! ईश्वरकृत वेद-पाठ सुनकर और क्या पुरस्कार लोगे?

तुम तो विधातासे अंत्यज-कुलमें जन्म लेनेकी प्रार्थना करना। बड़े सुखसे रहोगे। न पाठशालाओंमें माथापच्ची करनी पड़ेगी, न मंदिरोंमें सौ-सौ दण्डवत् प्रणाम। ऊंचे ऊंचे वर्गोंके

कुएं पर पानी भरने भी न जाना पड़ेगा। सिर्फ उनकी नीच टहल कर देनी होगी। सो कुछ मुफ्त नहीं, खानेको खासा जूठन मिलेगा। और कभी-कभी दो-चार जूतियां भी मिल जायंगी। फिर 'अछूत' नामसे भूषित भी किये जाओगे।

क्या कहा कि, 'गुण-कर्म-विभाग' से वर्ण-निर्माणका प्रमाण मिलता है? यह कबकी सड़ी-गली बात उखाड़ते हो! गुण-कर्म तो पगले मानते हैं, समझदार नहीं। न मानो तो धर्मव्यवस्थापकोंसे पूछ लो। क्यों, लेनी है व्यवस्था? कुछ टके भी पास हैं? जितना खर्च करोगे वे तुम्हें उतना ही लंबा चौड़ा व्यवस्था-पत्र लिख देंगे।

बोलो, भाई, क्या बनना चाहते हो? अच्छा, पागलोंकी जात-पांतमें मिलना चाहते हो? उनकी जात-पांतका क्या ठिकाना! वे सभी जातियोंमें हैं, और किसी जातिमें नहीं। एक पगलेने अपनी जातिका क्या खूब परिचय दिया है!

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहूकी बेटीसों बेटा न ब्याहब,काहूकी जाति बिगार न सोऊ।
'तुलसी'सरनाम गुलाम है रामको,जाको रुचैसो कहै कछुओऊ।
माँगिकै खैबो, मसीतको सोइबो, लैबेको एक न दैबेको दोऊ॥

यह है पगलोंकी जात-पांत। अच्छा, आओ प्यारे! हिल-मिलकर उसे खोजने चलें। अरे, हां—

फिर तुम कहाँ, औ मैं कहाँ ऐ दोस्तो !
साथ है मेरा - तुम्हारा चंद रोज़ !

इस चन्द रोज़के साथमें और करेंगे ही क्या ! जिसे जो करना हो खुशीसे करे। हम तो अपने प्यारेको ही इस चार दिनकी ज़िन्दगीमें खोजते फिरेंगे। अरे, क्यों छिपा-छिपा फिरता है निर्दय ! बाहर निकल क्यों नहीं आता ? छिपनेकी ही आदत पड़ गई है तो हम पगले भी तो तुझे छिपाकर ही अपनी आंखोंमें रखेंगे।

आओ प्यारे मोहना, झाँपि पलक तोहि लेउँ।
ना मैं देखौं औरको, ना तोहि देखन देउँ॥

यह तो मनकी बात होगी न ? न जाने, तुम्हारे मनमें क्या है। तुम्हारे मनकी थाह मिली ही किसे है। जीवन-धन, धन्य तुम्हारी मानसी लीला !

भैया हो ! पगलोंकी ही जात-पाँत मेरी समझमें कुछ-कुछ आती है। और तो सब पाखण्ड है ! अरे हां, यह सब पाखण्ड नहीं, तो क्या है ? हज़ारों उपजातियाँ क्या तुम्हारे समाजको आज खण्ड-खण्ड नहीं कर रही हैं ? इसपर भी एकता और प्रेम देखना चाहते हो ! क्यों, न तुम्हारी बुद्धिपर पत्थर पड़ें। राम करे, तुम्हारा सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाय ! तुम्हें मैं यही आशीर्वाद देती हूं कि तुम्हारा यह आजका समाज क्रान्तिकी आगमें

जलकर खाक हो जाय। इस सड़े-गले समाजने तुम्हारी आँखें आसमानपर चढ़ा दी हैं। लिये फिरते हो उन निर्जीव स्मृतियोंके दस पाँच टूटे-फूटे श्लोक! आत्म-घातियो! क्या ये श्लोक तुम्हारी आत्मोन्नतिसे भी बढ़कर हैं? किये जाओ जो करना हो! तुम्हारा सुधार कौन करेगा? अब तो प्रलय ही तुम्हारा एकमात्र सुधार है!

उस पगलेने सच कहा है कि—

काहूकी बेटीसों बेटा न ब्याहब,काहूकी जाति बिगार न सोऊ।

इस भ्रष्ट समाजमें आज विवाहके लिये स्थान ही कहां है? यह विवाह है? कहो, यह विवाह है? हा हा हा हा हा!! ओ पण्डितो! ओ पुरोहितो! आओ, विवाह करा दो। देखो, वह है आकाशमें शुक्र और वह है बृहस्पति। मिला डालो उन सब ग्रह-नक्षत्रोंको। भले ही यहाँ वर और कन्याका शील न मिले, उनके गुणोंमें भले ही पृथिवी-आकाशका अन्तर रहे या भले ही उनमेंसे एक व्यभिचारी, आजन्म रोगी और कुरूपवान् तथा दूसरा निरुद्यमी-नपुंसक, पर सुन्दर हो। तुम्हें इस सबसे क्या मतलब, तुम तो बस यह देख डालो कि मंगल, सूर्य, चन्द्र इत्यादि-में कोई खटपट तो नहीं है। जन्मकुण्डलियां मिल गईं, बस छुट्टी है! रोने-धोने दो उन अभागोंको जीवनभर; तुम्हें क्या पड़ी है! कुण्डलीमें वैधव्य-योग न चाहिये, प्रत्यक्ष भले ही वर

महोदय यम-महाराजके अतिथि बनने जा रहे हों। फूले फलो जाओ ज्योतिषियो! कराते जाओ जन्मकुण्डलियोंके आधारपर सैकड़ों बेमेल वृद्ध-विवाह और हजारों बाल-विवाह। बढ़ाते जाओ विधवाओं और वेश्याओंकी दिन-दूनी और रात चौगुनी संख्या। तुम्हारी तो चाँदी-ही-चाँदी है।

वर और कन्याके तुम मा-बाप भी कम भले आदमी नहीं हो! तुम्हारी भलमनसाहतसे ही अबतक यह समाज पृथ्वीपर टिका हुआ है। सचमुच अपने बाल-बच्चोंके तुम बड़े हितैषी हो! धन्य है तुम्हारी दूरदर्शिता! धन्य है तुम्हारी हित-चिन्तना! तुम्हारा कर्त्तव्य तो बस वंशकी श्रेष्ठता देखनेतक ही है। बिस्वे-बीघे मिला लिए, छुट्टी हुई! वंशका रक्त शुद्ध चाहिए, भले ही वर या उसके पिताका खून किसी गंदी बीमारीसे दूषित हो गया हो! तुम्हारे शास्त्रमें विवाहका अर्थ तो यही है न, कि जात-पाँत वाले तुम्हारे संबंधको दूधका धुला समझें, संसारमें तुम ऊंचे कहे जाओ और तुम्हारी वंश-मर्यादा गंगाकी धारा मानी जाय? बस इतना ही या कुछ और? उधर तुम्हारे विवाहित बाल-बच्चे भले ही जीवनभर असंतोषकी आगमें जला करें! भले ही बेमेल-विवाहसे असंतुष्ट होकर तुम्हारा प्यारा लल्लू वेश्या-गामी और तुम्हारी दुलारी मुन्नी व्यभिचारिणी हो जाय! कुछ भी हो, तुम्हारी मूंछ तो ऊंची रहेगी ही! असलमें अपने बाल-

बच्चोंका विवाह तुम लोग अपनी प्रतिष्ठा रखनेको करते हो, उनका सुख-संतोष बढ़ानेको नहीं। सो तुम्हारा यह संतति-स्नेह धन्य है! क्यों न तुम्हारी संतति तुम्हें श्रद्धाभक्तिकी दृष्टिसे देखे? संतति तो संतति ही है, तुम्हारा गुण-गान तो आज विदेशी भी कर रहे हैं, और करते रहेंगे। तुम्हारी करतूतें कोयलेकी तरह उजली और विष्ठाके समान पवित्र हैं। मेरा भी तुम्हें शतशः नमस्कार है!

अरे, क्या-क्या बक गई। छिः छिः! कुछ याद ही नहीं रहता।

'आये थे हरि-भजनको, ओटन लगे कपास।'

पगलोंकी मण्डली बनाने चली थी; बीचमें यह शादी-ब्याह आ कूदा। चलो भाई! उस 'दिनदूलह' को खोजने चलें। दूलह तो बस वही है। कैसी उसकी मोहिनी छटा है!

पांयनि नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनिमें धुनिकी मधुराई।
सांवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट, बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुख चंद-जुन्हाई।
जै जग-मंदिर-दीपक सुन्दर श्रीब्रजदूलह 'देव' सहाई॥

ऐसा है वह दिनदूलह। उसे निरखते-निरखते कौन तृप्त होगा? चलो मेरे पागलो! उसे देखने चलें। हैं! उधर क्या देख रहे हो! अरे, उसी नवयुवककी बारात आ रही है,—जिसका मैंने कल

पत्थरोंसे स्वागत किया था। यह उसका चौथा ब्याह है। बेचारेकी अभी अवस्था ही क्या है! साठ वर्षका तो है ही। अभी अभी किशोरावस्थामें पैर रखा है। चार पुत्र और तीन पौत्र भी हज़रतको ईश्वरने दिये हैं। कहते हैं कि विवाह सन्तानोत्पादनके अर्थ ही किया जाता है। पर वह साठ सालका सुंदर नौजवान इस पुराने प्रमाणको नहीं मानता। पुत्र-पौत्रादि हो जानेपर भी ब्याह करना चाहिए, उसका तो यही धार्मिक सिद्धान्त है। इसीलिये वह साठ सालका छोकरा बारह वर्षकी बुढ़ियाका पाणिग्रहण करने जा रहा है! सुना है कि कल या परसों श्मशान-पुरीमें उसका एक और ब्याह होगा। और वह बारह वर्षकी बुढ़िया फिर कितने ही रसिकोंकी रँगीली आँखोंसे आँखें लड़ाती फिरेगी। तारीफ़ तो उस वृद्धा-कन्याके माँ-बापकी है, जो, लोभ और स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर, ऐसे साठिया नौजवानको अपना दामाद बना रहे हैं! अहा! क्या ही पवित्र परिणय है! बोलो एक बार हिन्दू-समाजके कर्णधारोंकी जय!

अस्तु। मैं तो उसी दिनदूलहको देखने जा रही हूं, जिसकी दुलहिनने तीन लोकमें लूट मचा रखी है। अरे, हां,—

रमैयाकी दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मचि हाहाकार॥

पर जो उसके दूलहके हाथों लुट चुका है, उसे वह कैसे लूटेगी? सो, चलो हम सब पगले उसीके द्वारपर लुटनेके लिए चलें। ऐसा अवसर फिर हाथ आनेका नहीं। चलो मेरे प्यारे!

फिर तुम कहाँ, औ मैं कहाँ, ऐ दोस्तो!
साथ है मेरा तुम्हारा चंद रोज़॥

लूट ले, ओ लुटेरे, लूट ले। हमारा जो कुछ हो, सब लूट ले। हम लुटनेहीको आये हैं। कुछ भी न छोड़ प्यारे लुटेरे!

लूट लूट सब लूट, लुटेरे!
तन धन लूट, लूट मन एरे, लूट प्रान हूँ मेरे॥
लूट नैन, हिय लूट रँगीले, नेह लूट सब तेरे।
निसिदिन लूट मचाय लाड़ले, झलक आपनी देरे॥

तुम लोग बड़े चंचल हो। मैं गा रही हूँ, तुम उधर बाजे सुन रहे हो; तुम्हें बारातके ही बाजे पसन्द हैं। सुने जाओ। तुम भी अपना दूसरा-तीसरा ब्याह कर डालो। तुम्हारे पत्नी-विरही मित्रने भी तो अपना तीसरा विवाह किया है। अरे, तुम्हारे उसी मित्रने, जो अपनी प्राण-प्यारी पत्नीकी चितापर विरहाकुल हो उस दिन गिरा पड़ता था। बेचारा उस सुन्दरीके विरहमें पागल-सा हो गया था। अब तीसरा ब्याह कर डाला है। नयी सुर-सुन्दरी प्राणप्यारीका प्राण-प्यारा बन गया है। कैसा अनन्य पत्नी-भक्त है! पतिव्रता नारियाँ भी तुम्हारे पत्नी-व्रत मित्रसे बहुत

कुछ शिक्षा ले सकती हैं। और नहीं तो ब्रह्मचर्य और संयमका यथार्थ पाठ तो सभी पत्नीव्रत-पुरुषोंको ऐसे महात्माओंसे लेना चाहिए।

अरे, यह सब उसी दूलहकी दुलहिनकी लीला है। हाँ, उसीकी, उसीकी। उसी रमैयाकी दुलहिनकी—

रमैयाकी दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मचि हाहाकार॥
ब्रह्मा लूटे, महादेव लूटे, नारद मुनिके परी पछार।
शृंगीकी भिंगी करि डारी, पारासरके उदर बिदार॥
कनफूँका चिरकासी लूटे, लूटे जोगेसुर करत विचार।
हम तो बचिगे साहब-दयासे, शब्द-डोर गहि उतरे पार।
कहत 'कबीर', सुनो भाई साधो, या ठगिनीसे रहौ हुसियार।

उससे होशियार रहनेके यही तो रास्ते हैं। प्रेमियोंके साथ विश्वासघात करना, प्रेमका स्वाँग रचना, प्रेम-पात्रोंका उपहास करना तथापि प्रेम-मन्दिरका पुजारी बना रहना ही तो रमैयाकी दुलहिनसे होशियार रहनेका सीधा-सादा उपाय है। स्वर्गीय प्राणेश्वरीका विषम-वियोग कामदेवकी अर्चनासे ही दूर होता है। अरे, तुम्हारे विरही मित्रने होशमें थोड़े ही अपना नया ब्याह किया है। बेचारेने पत्नीकी विरहोन्मत्ततामें ही नई प्रणयिनीको हृदयेश्वरी बना डाला है। देखो तो, तुम्हारा मित्र रमैयाकी

ठगिनी दुलहिनसे कितना होशियार रहता है ! कहो, अब मैं अपने उस लुटेरेसे कैसे होशियार रहूँ ? कौन होशियार रहे। मुबारक हो मेरी यह बेहोशी।

लूट लूट, सब लूट, लुटेरे।

लुटा दो, उसकी यादमें अपना-पराया जो कुछ तुम्हारे पास हो। आँखोंकी नींद लुटा दो। हृदयके भाव लुटा दो। मनके माणिक लुटा दो और आत्माका सर्वस्व लुटा दो। वह लुटेरा भी क्या कहेगा ! लूटे, क्या-क्या लूटता है। अरे हाँ,

तन धन लूट, लूट मन मेरे, लूट प्रानहूँ मेरे।

लूट, लूट, सब लूट, लुटेरे॥

फिर तुम्हारे कान उधर ही लग गये। आँखें भी वहीं टक लगाये हैं ! अच्छा, जीभरकर सुन-देख लो। पीछे पगलीका महा पुराण सुनना।

वाह ! इस बारातका दूलह देखने-योग्य है। आठ-नौ साल-का बुढ़वा है। धन्य हैं इसके माँ-बाप। बहूको देखकर मरनेके पहले अपनी आँखें तो गरम कर लेंगे ! उस भाग्यवती कन्याकी उम्र भी बहुत बड़ी होगी। जरूर छः-सात सालकी बुढ़िया होगी ! विधाताने क्या ही अनुपम जोड़ी मिला दी है ! कलियुगी सुधारक इस आदर्श विवाहको गुड़ियोंका खेल कहेंगे। मुये शास्त्र तो पढ़े नहीं, सुधार करने चले हैं। अष्टवर्षा कन्या गौरी होती

है ? सो वह गौरी है और यह वर है शिव। क्या इनके पुत्र कार्तिकेय और गणेश-जैसे बलवान् और बुद्धिमान न होंगे ? अवश्य होंगे। संभव है कि उनमेंसे कोई-कोई तो गर्भमें ही यमसे भिड़ पड़े। अवश्य ही इस भाग्यवान् दम्पतिको राजयक्ष्मा नामकी महासिद्धि सिद्ध हो जायगी, जिसके बलसे इसे यमपुरीका अमोघ दर्शन अनायास ही प्राप्त होगा। ईश्वर करे, तुम्हारे समाजमें घर-घर ऐसेही आदर्श विवाह हुआ करें। ऋग्वेदके लकड़दादेका यह प्रमाण कितना सत्य है—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत् कन्या तदूर्ध्वं च रजस्वला॥

यह श्लोक इतना प्राचीन है, इतना परम प्राचीन है, कि स्वयं विश्व-निर्माता विधाता भी उतना प्राचीन नहीं है। ईश्वरके अस्तित्वमें चाहे विश्वास न भी करे, पर इस प्रमाणकी प्राचीनता और समीचीनतामें तो अवश्य ही प्रत्येक आस्तिक महात्माको विश्वास करना चाहिए। भैया, इस आदर्श दूल्हको देखकर मेरा तो अंग-प्रत्यंग पुलकित हो गया है। धन्य है आजका स्वर्ण-दिवस !

लो, इस बारातमें दिव्य वाराङ्गनाएँ भी आई हैं। परम तपस्विनी, परम ब्रह्मचारिणी आदिकुमारियाँ यही तो हैं। इन सावित्रियोंसे संयमकी शिक्षा ग्रहण करो ! व्याह-शादियोंमें इनका

होना बहुत ही ज़रूरी है ! छोटे-छोटे बच्चोंको ये मंगलामुखियाँ इस शुभावसरपर अवश्य ही अपने लोल-कटाक्षोंकी दीक्षा देंगी; इसीसे तो विवाह एक मांगलिक पर्व माना गया है ।

क्या कह रही थी, क्या कहने लगी ! तुम लोग बड़े पागल हो ! विषयान्तर हो जानेपर भी मुझे बीचमें टोकते नहीं ! भले श्रोता मिले ! हाँ, वह प्यारा लुटेरा इधर आता भी नहीं । कबसे उसकी बाट जोह रही हूँ । कितनी शादियाँ देख डालीं,कितने ग़म देख डाले । कबसे मन बहला रही हूँ । उस ज़ालिमकी याद भुलानेको क्या-क्या नहीं कर रही हूँ । विचित्र दशा है ! न आता ही है, न भूल ही जाता है । इस दुविधामें मैं तो कहींकी न रही। हा ! क्या करूँ !

सजन, सुध ज्यों जानौ त्यों लीजै ।
तुम बिन मेरो और न कोई, कृपा रावरी कीजै ॥
दिवस न भूख, रैन नहिं निदिया, यों तन पल-पल छीजै ।
मीराके प्रभु गिरिधर नागर, मिलि बिछुरन नहिं दीजै ॥

तुम्हें अपने साथ क्यों रुलाऊँ ? बाबा, तुम तो मौज करो । जाओ, इस शादीमें शामिल हो जाओ । खूब हँसो, खूब गाओ । मैं यहीं खड़ी-खड़ी रोती रहूँगी । शायद मेरे रोने-धोनेको ये लोग अमंगल समझें । समझने दो । मेरे लिये तो मेरा रोना-धोना ही मंगल है । सुना है कि एक बाल-विधवाको इन भले आदमियों-

ने इसलिए एक कोठरीमें बन्द कर रखा है कि कहीं वह मूर्खा इस मांगलिक अवसरपर रोने न बैठ जाय। ठीक किया है! जीभरकर जिसकी एक बार सूरत भी न देखी थी, उस पति नामधारी मृतप्राणीके वियोगमें वह किसलिये रोती है? उदार समाजने विधवा-ऐसी पवित्र उपाधिसे उस मूर्खाको विभूषित कर दिया है, फिर भी रोती है! अब और क्या चाहती है! मुई अपनी नवयुवती सासके सौभाग्य-शृंगारपर जली मरती है। महातपस्वी पूज्य श्वसुरने अपनी चौथी शादी करा डाली, तो क्या बुरा किया! इसी पुण्य-अनुष्ठानपर रांड जली-भुनी जाती है। किसने मना किया कि वह भगवान् कामदेवकी सेवा-पूजा न करे? करे, पर गुप्तरीतिसे करे। विधवाओंको गुप्तरीतिसेही काम-सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए। उनके लिये यही व्यवस्था समाजने दे रखी है। पर वह ठहरी महामूर्खा। खुलकर खेलना चाहती होगी। शिव शिव! यह तो घोर पातक होगा। विधवाओंके लिए तो मदनदेवकी आराधना,

गोप्या गोप्या परं गोप्या गोपनीया प्रयत्नतः।

ऐसा शास्त्रका वचन है। इसीलिये तो बुढ़वा-शास्त्रने बाँह उठाकर यह घोषणा कर दी है कि विवाह करनेका विधुरको ही अधिकार है, विधवाको नहीं। इसके बदलेमें हमारे उदार चेता धर्मशास्त्रियोंने विधवाओंको गुप्त काम-केलिका दिव्य अधिकार दे

दिया है। सो, यह दुर्लभ अधिकार पाकर इन बाल-विधवाओंको अक्षय पुण्य कमाना चाहिए। यदि इनसे अपने अधिकारकी रक्षा करते बन गई तो एक दिन ये अमंगलाएँ मंगलामुखियोंके भी कान काटने लगेंगी।

चूल्हेमें जायँ तुम्हारी विधवाएँ और विधुर। खाक हो जायँ तुम्हारी शादियाँ और ग़म। रोओ चाहे गाओ। मेरा तो रास्ता ही दूसरा है। मेरा साथ दोगे तो अच्छा, और न दोगे तोभी अच्छा।

यां यूँ भी वाहवा है औ वूँ भी वाहवा है!

मेरा मतलब तो उस लुटेरेसे है। उसका मिल जाना ही मेरे लिये मंगल होगा। जबतक वह नहीं मिला, तबतक तुम्हारे सारे मंगल मेरी नज़रमें अमंगल ही हैं। और तो और, मुक्ति भी तबतक महा अनिष्टकारिणी है।

जौ न जुगति पिय-मिलनकी, धूरि मुकति-मुख दीन।

सो, अब तो दया करो! क्यों मरे को मारते हो?

सजन, सुध ज्यों जानौ त्यों लीजै।
तुम बिन मेरो और न कोई, कृपा रावरी कीजै॥

अब तो तुम्हारा बिछोह सहा नहीं जाता। क्यों व्यर्थ तड़पा रहे हो। अब भी दया करो, कृपा-नाथ!

प्यारे, अब तौ सही न जात।
कहा करैं कछु बनि नहिं आवत,निसि दिन जिय पछितात॥

जैसे छोटे पिंजरामें कोउ पंछी परि तड़ुपात।
त्यौंही प्रान परे यह मेरे छूटनकौं अकुलात॥
कछु न उपाव चलत अति व्याकुल मुरि-मुरि पछरा खात।
'हरीचन्द' खींचौ अब कोउ विधि छांड़ि पांच औ सात॥

बाँह पकड़कर खींच क्यों नहीं लेते, प्रभो? खींच ही लिया, तोभी क्या, क्योंकि सुना है कि—

खैंचि आपनी ओरकौं डारि देत पुनि दूर।

सो, अब कुछ ऐसा करो कि खींचा सो खींचा। क्यों बाबा, ठीक है न? मैं इस निष्ठुरके हाथसे अपना वैसा उद्धार नहीं कराना चाहती, जैसा कि तुम्हारा उदार समाज किया करता है! तुम्हारा समाज तो स्वर्गीय है। इसकी कहाँतक प्रशंसा करूँ। यही देख लो, विधवाओंका कैसा आदर्श उद्धार किया है! ये पाप-पंक-मग्ना बालविधवाएँ सहज ही भगवत्परायणा बना दी गई हैं। शूद्रस्वरूपा अनधिकारिणी स्त्रियोंको भी एकादशी इत्यादिके व्रतोंकी व्यवस्था दे दी गई है। संयम और ब्रह्मचर्यकी भी शिक्षा दी जा रही है। अदृश्य और निराकार पतिभगवान्‌की उपासना करनेका भी अधिकार इन भाग्यवती बालविधवाओंको धर्मावतारोंने दे रखा है। अब और क्या चाहिए! क्या बेचारी सौभाग्यवतियोंके सिरपर बैठेंगी, या गरीब पुरुषोंकी बराबरी करेंगी? स्त्री और पुरुषमें समानता ही क्या? पुरुष पुरुष ही है,

स्त्री स्त्री ही है। पुरुष सदा वन्दनीय है, और स्त्री सदैव निन्दनीय है—ऐसा 'पुरुष-शास्त्र' में लिखा है। स्त्री तो 'सदा ताड़नाकी अधिकारिणी है।' कारण कि वह पुरुषकी अपेक्षा घरका काम-काज बहुत अधिक करती है, दूसरोंको हलुवा-पूड़ी खिलाकर खुद सूखा खाती है, और पतिदेवके पाद-प्रहारको भृगुमुनिकी लात समझती है। उनको सिरपर नहीं चढ़ा लेना चाहिए। एक मूर्खने यहां तक लिख डाला है कि—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

इसका पाठ यों होना चाहिए—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र दानवाः।

अथवा—

यत्र नार्यस्तु ताड्यंते रमंते तत्र देवताः।

हमारे वेदान्ती महात्माओंने ही उनका यथेष्ट सत्कार किया है। 'नरककी हंडी, मायाकी मूर्त्ति' इत्यादि सुन्दर उपाधियोंसे उन्हें विभूषित किया है। वेदान्तियोंकी उत्पत्ति नारियोंसे तो है नहीं, उनका जन्म तो ब्रह्मयोनिसे हुआ है। इसीलिये उन नरक-हंडियोंका रहस्य ब्रह्मभूत वेदान्ती ही ठीकतौर से समझ सके हैं। यह तो मैं कह ही चुकी हूँ कि स्त्री और पुरुषमें समानता ही क्या! पुरुष तो जन्मसे ही पंडित, पुण्यवान्, संयमी और स्थितप्रज्ञ होता है। यदि स्त्री नरककी हंडी है, तो वह

'स्वर्गका हंडा' है। स्त्रीको अपनी अर्द्धांङ्गिनी मानकर भी वह स्वयं उसका अर्द्धांग नहीं बना है। यही तो उस स्थितप्रज्ञकी निर्लेपता है! स्त्रीको पतिव्रता बननेका उपदेश देकर भी वह स्वयं पत्नीव्रत नहीं बन गया है। यही तो उस महात्माकी निष्कामता है! कहाँतक इस क्षुद्र मुखसे पुरुषकी प्रशंसा करूं। उसका गुणगान तो वेदभगवान् भी 'पुरुष सूक्त' में करते-करते थक गये हैं। आज उसकी बराबरी करने चली है वह अधम अबला!

कुछ मूर्ख लोग स्त्रीको शक्ति मान बैठे हैं! मान भी लो कि वह शक्ति है। सो क्या हुआ? पुरुषको शक्तिकी क्या ज़रूरत? पुरुष तो अशक्त ही शोभा देता है। सशक्ति पुरुष किस कामका? भगवान् अशक्तोंकी ही रक्षा करता है, सशक्तों या सबलोंकी नहीं। सुना नहीं कि 'निर्बलके बल राम?' शक्ति-प्रयोग उन मंदमति स्त्रियोंके ही हिस्सेमें रहना चाहिए। यह बेगार सुकुमार सुन्दर पुरुषसे क्यों ली जाय! महिषासुर और शुंभ, निशुंभका अपवित्र रक्त पीनेको चंडी ही काफ़ी है। यह रद्दी काम शंकरका नहीं। निर्दोष गोरे सैनिकोंको क़त्ल कर देना पगली लक्ष्मीबाईको ही शोभा देता है। यह अनीति-मय कार्य न्यायपरायण पुरुषके करनेका नहीं है। सौ बातकी बात तो यह है कि पुरुषको शक्तिकी कोई जरूरत नहीं। अब समझे या नहीं?

दो घूँट पानी तो पिला दो, भाई ! प्यासके मारे गला सूख गया है। कैसे कथा कहूँ ! तुम श्रद्धावान् श्रोता नहीं हो। कथापर एक गिलास पानी भी नहीं चढ़ाते। पूरे कलियुगी श्रोता हो। खैर, पानी फिर पिऊंगी। इस पानीसे तो प्यास बुझनेकी नहीं और जिस पानीसे कलेजा ठंडा होगा, वह तुम्हारे बसका नहीं। हाँ ! भला उस नीरको तुम कहाँसे लाओगे ! तुम्हीं बताओ, उस प्रभुका स्नेह-नीर तुम ला सकोगे ? थोड़ासा ही ला दो। एक ही घूँट ला दो। ला दो, तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। पगली ! क्या रट लगा रही है। उस नीरको ला देनेकी किसमें सामर्थ्य है। वह आनन्दाम्बु तुझे कौन देगा ?

अरी, मैं वा जल की मछुरी।
ना जानौं, जा अगम सिंधुतें कबकी हौं बिछुरी॥
अवगाहे केते सरित सर, मगन होय बिहरी।
बिषम बिषय-विष व्यापि रह्यौ तन, भ्रमि-भ्रमि जाल परी॥
मधुर दूध-दधि भरित सरन बिच निर्भर केलि करी।
दिन-दिन तन दवारि-सी लागी, पल-पल जरी-बरी॥
बिरह-अधीर भई अब कैसेहुँ रहति न धीर-धरी।
'हरि' कब फेरि मिलैगी मेरी आनँद-रस-लहरी॥

वह आनन्दाम्बु, न जाने कब मिलेगा। खैर, मेरे दुःखमें तुम्हें दुखी होनेकी कोई ज़रूरत नहीं। तुम तो मेरी कथा सुने जाओ। अच्छा,

हियांकी बातें हियां जु रहि गई, अब आगेके सुनो हवाल।

उदार-हृदय पुरुषने कृतघ्ना स्त्रीको एक बहुत ही बढ़िया पुरस्कार दिया है। वह क्या है, जानते हो ? वह है परदा-प्रथा। धन्वन्तरिके मतसे वह परम स्वास्थ्य-प्रदायिनी प्रथा है। पतंजलिके मतसे वह परम चित्त-वृत्ति-निरोधिनी महासिद्धि है। और व्यासके मतसे वह परम सदाचार-विधायिनी प्रणाली है। वह बड़ी ही प्राचीन प्रथा है। वेद तो अभी कलका बना हुआ है! वेद-निर्माणसे तो वह प्रथा बहुत पहलेकी है। उस प्रथाने कुरूप-वतियोंको सौन्दर्य, दुश्चरित्राओंको सदाचार और सतीत्व तथा आजन्म रोगग्रस्ताओंको आरोग्य प्रदान किया है। उस स्वर्गीय प्रबला प्रथाने विद्याको खदेड़ दिया है, लक्ष्मीको लथेड़ मारा है और शक्तिको पछाड़ दिया है। उस प्रथाके कट्टर शत्रु, जानते हो, कौन है ? संयमी और सदाचारी पुरुष। उस धर्म-प्रणालीके विरुद्ध जानेवाली स्त्रियोंका सर्वत्र अपयश छाया हुआ है। दुर्गा-वती, अहल्याबाई और लक्ष्मीबाईको आज कौन श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता है ? यह परदाके खिलाफ़ जानेका ही फल है।

परदा तो आज खुदाने भी हम सबोंसे कर रखा है। जिन्हें मैं खोजती फिरती हूँ, वह हज़रत भी कहीं परदा किये बैठे हैं। जब मेरा साईं तक परदापसंद है, तो मैं उस परदेकी तारीफ़ क्यों न करूँ ? पर, उस परदेकी उपमा इस परदेसे कैसे दी

जा सकती है? पगली, उस प्यारेका परदा तो कुछ और ही चीज़ है। उसकी याद मत किया कर।

पुरुषने स्त्रीके साथ और भी तो अनेक उपकार किये हैं। क्या यह साधारण बात है कि वह वेद-पाठ इत्यादिके भारी भारसे सदाके लिये मुक्त कर दी गई है? उसे अक्षर-शत्रु बनाकर क्या बुद्धिमान पुरुषने व्यभिचार आदि पापोंसे नहीं बचा लिया है? गृहिणीसे रमणीमें उसे परिणत कर लेना क्या कोई मामूली बात है? सहस्रों कुलवधुओंको मंगलामुखियाँ बना डालना पुरुषकी कम सहृदयता नहीं है! बेचारे पुरुषको आज भी अहोरात्र रमणी-की ही चिन्ता रहती है। उसके स्तनों और नितंबोंकी नई-नई उपमाएँ खोजते-खोजते ग़रीब हैरान हो रहा है। कविहृदय पुरुषने उस महाअपवित्र नारीकी कटिको, जो अनिर्वचनीय पर-ब्रह्मकी कोटिका मान लिया है, सो क्या कोई मामूली समझका काम है? देखो तो, कृतघ्ना स्त्रीका कैसा सम्मान किया गया है। इतना सब होते हुए भी आजकलकी कुछ शिक्षिता नारियोंने पुरुषोंके ख़िलाफ़ बग़ावत शुरू कर दी है। आज वे शैतानकी बच्चियाँ वेदतक पढ़ना चाहती हैं। अपने भाग्यका निबटारा अपने ही हाथों करना चाहती हैं। लो, अब वे पुरुषकी बराबरी करेंगी! कल एक कवि-सम्मेलनका उन्होंने इसलिये बाय-काट कर दिया कि उसमें कुछ रसिक कवियोंने प्यारीके कुच-नितंबोंपर